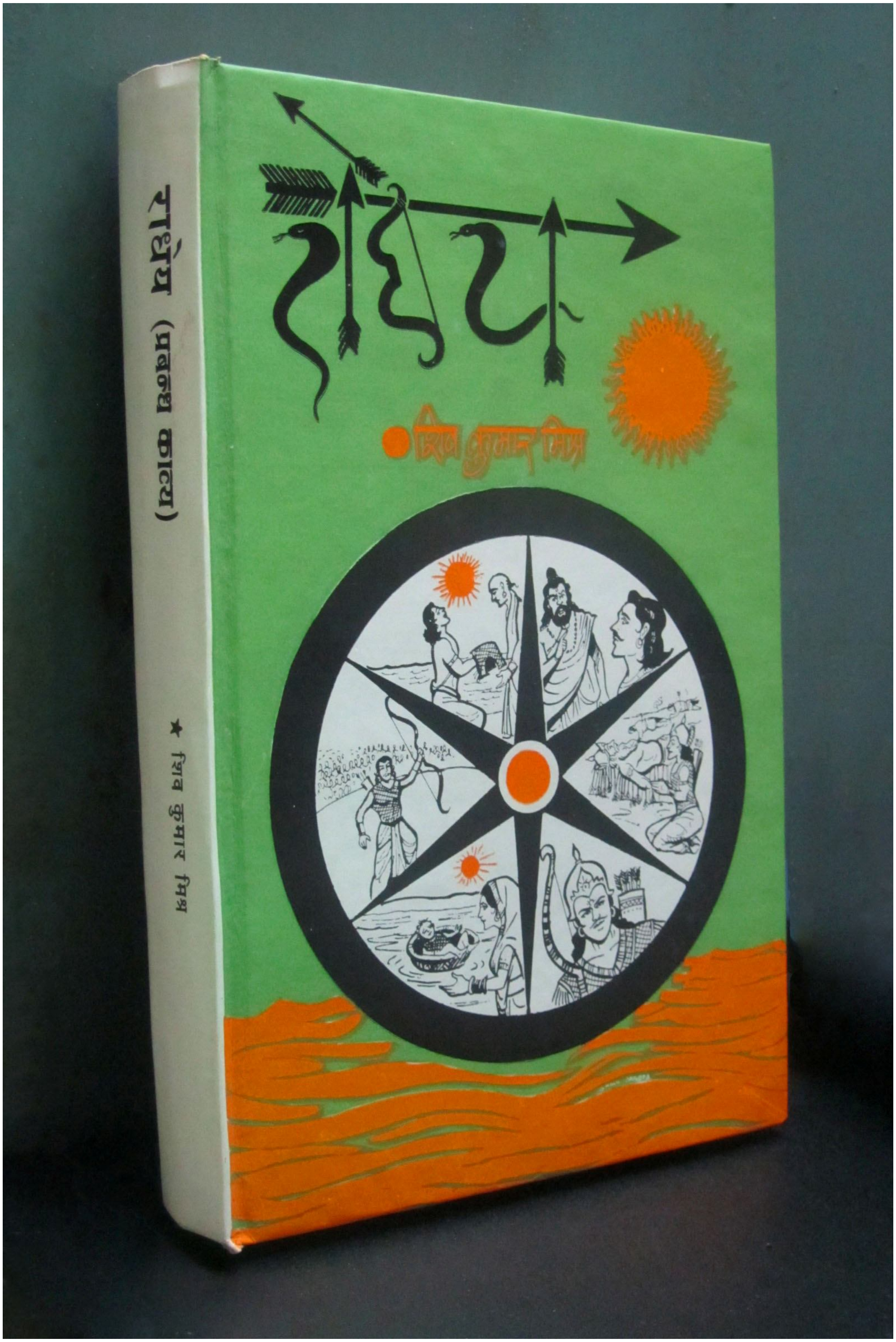
राधेय
शिव कुमार मिश्र
राधेय (प्रबन्ध काव्य)
★ शिव कुमार मिश्र

राधेय

(प्रबन्ध काव्य)

शिवकुमार मिश्र
आई०ओ०एफ०एस०

✆ 242 9079
कवि सभा दिल्ली
30/106, गली नं०-7, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110 032

(मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् के सहयोग से प्रकाशित)

© : लेखक

प्रकाशक : कवि सभा दिल्ली
30/106, गली नं० 7, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

वितरक : साहित्य वीथी,
27/111, विश्वास नगर, शाहदरा
दिल्ली-110032
दूरभाष : 2429079

प्रथम संस्करण : 1995

मूल्य : 250.00 रुपये

मुद्रक : अशोक कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा,
कमल प्रिंटर्स, दिल्ली-31 में मुद्रित

RADHEYA (Epic) by Shiv Kumar Mishra I.O.F.S.

समर्पण

"त्याग, तपस्या, साहस, धैर्य
और वात्सल्य की दिव्य
मूर्ति स्वर्गीया अम्मा जी
को समर्पित ।"

आत्म निवेदन

कर्ण का चरित्र मुझे बाल्यकाल से ही प्रभावित करता आया है। विद्यार्थी जीवन में दिनकर जी की रचना "रश्मिरथी" पढ़कर मुग्ध हो जाता था। शासकीय सेवा में आने पर प्रशिक्षण के लिए नागपुर गया वहाँ शिवाजी सावन्त महोदय का महान उपन्यास मृत्युंजय (हिन्दी अनुवाद) पढ़कर कर्ण के चरित्र को पूर्णता से जानने और अनुभव करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

जबलपुर जिले के कटनी नगर में अपनी पदस्थापना होने पर मैं कटनी से 15 किलोमीटर दूर स्थित बिलहरो नामक स्थान पर गया तो वहाँ के लोगों से ज्ञात हुआ कि ये दानवीर राजा कर्ण के महल के अवशेष हैं। यद्यपि ऐतिहासिक प्रमाण इसके पक्ष में नहीं हैं कि इनको महाभारत के महान पात्र वीर कर्ण से सम्बद्ध किया जा सके तथापि कर्ण के विषय में चिन्तन पुनः प्रारम्भ हो गया।

मैंने महाभारत पढ़ा यह जानने के लिए कि इस पात्र के मूल सर्जनाकार इस विषय में क्या कहते हैं क्योंकि वही सबसे प्रामाणिक होगा। मेरा संस्कृत भाषा का ज्ञान इसमें बड़ा सहायक हुआ।

कर्ण के चरित्र को पढ़कर मैं अभिभूत हो गया चिन्तन प्रारम्भ हो गया मुझे लगा कि जातिगत द्वेष, अवसर की असमानता, लोभ और स्वार्थ छल और प्रपञ्च, सामाजिक विसंगतियाँ और शोषण प्रत्येक युग की समस्याएँ रहीं है और आज भी हैं सम्भवतः और भी विकृत रूप में अतः इन विसंगतियों से केवल अपने पुरुषार्थ के बल पर जूझने वाले और अन्त में सबका सम्मान व स्वीकृति पाने में सफल होने वाले महामानव कर्ण आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। मुझे लगा कि सामाजिक स्वीकृति का कितना महत्व है इसके अभाव में गुणवान भी तिरस्कृत और उपेक्षित रहते हैं इसके विपरीत सामाजिक स्वीकृति होने पर अपेक्षाकृत गुणहीन व्यक्ति भी यशस्वी और सत्तावान हो जाता है।

जब समाज में गुणवान व्यक्ति तिरस्कृत होते हैं योग्यता जब जाति, वंश, धर्म या धन के आधार पर आँकी जाती है तो वह समाज अपकर्ष को प्राप्त होता है। क्योंकि अयोग्य शासन करते हैं और गुणी अन्ततः प्रतिक्रियावादी होकर

अधर्म का साथ देने तक को तत्पर हो जाते हैं। उनकी विद्रोही मानसिकता और पुरुषार्थ का लाभ धूर्त जन अपने स्वार्थ के लिए उठाते हैं और उनके बल पर सत्तासीन होते हैं। इससे समाज में विप्लव और विखण्डन की स्थिति आ जाती है।

आज के दिग्भ्रान्त और अपनी संस्कृति के गौरव के प्रति अज्ञ युवा वर्ग को गौरवमयी आर्य संस्कृति की झाँकी कर्ण के चरित्र से मिल सकती है जो जाति-गत द्वेष, विसंगतियों, शोषण, अवसर की असमानता के विरुद्ध अकेले संघर्ष करता है। छल कपट कायरता और स्वार्थ के वर्तमान वातावरण में इस महामानव के चरित्र से हम उदारता, दानवीरता, मैत्री और त्याग का पाठ सीख सकते हैं।

मुझे यह भी लगा कि किस प्रकार अपनी दिव्यता और महान उद्भव को भूलकर यह जीव अहंकार से एकरूप हो उसका आज्ञाकारी बन अधर्म का साथ देने लगता है। और फिर सद्गुरु के वचन और आत्मा की पुकार भी उसे अधर्म से निवृत्त नहीं कर पाती क्योंकि बहुत देर हो चुकी है। इस दृष्टि से हम सभी कहीं न कहीं किसी न किसी अर्थ में कर्ण के समान हैं।

कर्ण के विषय में कुछ कहने की तीव्र उत्कण्ठा जागी किन्तु लगा पहले ही महाकविगण और मूर्धन्य साहित्यकार इस विषय में सब कुछ कह गये हैं क्या नया कुछ कहा जा सकता है ? फिर हृदय ने कहा मौलिकता का आग्रह छोड़ो जैसा बने लिखो। तर्क था चन्द्रमा और तारों के रहते हुए भी प्रकाश के लिए लोग दीपक जलाते ही हैं मैं भी काव्य का लघु दीपक अपनी प्रसन्नता के लिए प्रज्ज्वलित करूँ।

मेरी शिक्षा संस्कृत, भूगोल तथा अर्थशास्त्र में हुई है धर्म दर्शन तथा इतिहास भी थोड़ा-सा पढ़ा है। हिन्दी साहित्य में दिनकर जी, प्रसाद जी व मैथिली जी और केशवदास के अतिरिक्त कुछ पढ़ा नहीं है। प्रश्न था कैसे लिखूं और क्या लिखूं महाकवि भारवि के शब्द याद आए—

विविक्तवर्णाभरणा सुख श्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृत पुण्य कर्मणां प्रसन्न गम्भीर पदा सरस्वती ।।

मैं निराश हो गया मेरा भी विचार था कि कवि वही हो सकता है जिसमें

सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति विपुल अनुभव विराट जीवन का।
भाव प्रवणता युक्त हृदय हो अन्वेषी जन मन का।
भाषा पर अधिकार विविध शास्त्रों में पारंगत हो।
सूरि वही जिसकी वाणी की जनहित से संगति हो ।।

और मैं ठहरा सामान्य व्यक्ति। किन्तु ईश्वर को कुछ और ही कराना था और एक चमत्कार 23 मार्च 1989 को जब मैं कटनी स्थित अपने निवास के लॉन में बैठा था, घटित हो गया मैं अचानक लिखने लगा। प्रारम्भिक पद्य अपने काव्य गुरु श्री धर्मपाल अवस्थी जो पड़ोस में ही रहते थे दिखाए उन्होंने प्रोत्साहित किया और प्रवाह चल पड़ा लगभग ढाई वर्षो तक जो घटित होता रहा उसकी परिणति यह कृति है।

कर्ण को कभी न्याय नहीं मिला और मैंने भी उस उदात्त चरित्र को शब्दों में सीमित करने के प्रयास में अन्याय ही किया है।

महाभारत की मूल कथा में यत्र तत्र मैंने परिवर्तन किए हैं। कर्ण व दुर्वासा सम्वाद तथा पूरा मन्थन सर्ग कल्पित है। हिन्दी के छन्दों के अतिरिक्त कहीं-कहीं पर संस्कृत वृत्तों का भी प्रयोग किया है। आत्मचिन्तन परक शैली का प्रयोग किया है कुन्ती के परिताप से ग्रन्थ प्रारम्भ होता है और कर्ण की वीरगति पर कुन्ती के विलाप से हो 14 सर्गों का यह 1250 पद्यों से युक्त ग्रन्थ समाप्त होता है।

मैं अपने गुरु श्रद्धेय श्री सर्राफ, श्री रतन चन्द्र जैन, श्री शंकर प्रसाद तिवारी जी को नमन करता हूँ। माता श्रीमती राम सहेली और पिता श्रीयुत भगवान दयाल मिश्र को नमन करता हूँ जिन्होंने मुझे जन्म दिया, संस्कार दिए और ज्ञान दिया। अपनी बहिन ममता और पत्नी रत्नेश का आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के लेखन में मुझे सहयोग दिया।

मैं कवि सभा के सचिव श्री पराग प्रदीप तथा संयोजक डॉ० इन्द्र सेंगर का आभारी हूँ, जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अथक परिश्रम किया है।

अपनी यह प्रथम कृति बड़े संकोच के साथ पाठकों को सौंप रहा हूँ इस काव्य से उन्होंने यदि थोड़ा भी आनन्द मिला तो स्वयं को कृतार्थ समझूंगा। विज्ञ पाठक काव्य दोषों के लिए मुझे क्षमा करें। क्योंकि--

युवा मन का बाल उद्यम ग्रन्थ यह राधेय है।
काव्य कौशल मर्म इस अल्पज्ञ को अज्ञेय है॥
दोष कर देंगे उपेक्षित क्षमा बालक जानकर।
ढूंढ़ लेंगे दोष में गुण विज्ञ अपना मानकर॥

—शिव कुमार मिश्र
उप सचिव
भारत सरकार
कृषि मन्त्रालय

एफ-311, कर्जन रोड एपार्टमेंट
कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3383508

कर्ण—एक परिचय

महाभारत जैसाकि सर्वविदित है पराशर ऋषि के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास, जिन्हें भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी विभूति बताया है (मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः) (गीता 37/10) ने इस महान ग्रन्थ की रचना की है इसे भारतीय धर्म और संस्कृति का विश्वकोश कहा जाता है। व्यास जी यह घोषणा अक्षरशः सत्य है—

धर्मे चार्थे कामे मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥

व्यासजी इसे इतिहास कहते हैं। अतः इसमें वर्णित पात्र और महाभारत का कुरुक्षेत्र का महायुद्ध काल्पनिक नहीं हैं।

"इतिहास प्रदीपेन मोहावरण घातिना।"

महाभारत भविष्य में कवियों को प्रेरणा देता रहेगा और श्रेष्ठ कवियों का उपजीव्य होगा। यह घोषणा स्वयं ऋषिवर कर गए हैं—

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः॥

और यही हुआ। संस्कृत हिन्दी और अनेक अन्य भाषाओं में महाभारत से प्रेरणा लेकर कवि जन ने विपुल वाङ्मय का सृजन किया है। भास, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, भट्टनारायण जैसे संस्कृत महाकवियों और श्री मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद जैसे श्रेष्ठ हिन्दी कवियों ने महाभारत से अपनी कृतियां का बीज प्राप्त किया है।

महाभारत में कोई एक नायक नहीं है अनेक महापुरुषों का वर्णन है फिर भी व्यासजी ने सबका चरित्र चित्रण इतनी पूर्णता से किया है कि पात्र आज भी सजीव होकर मन पर छा जाते हैं। वे चाहे पाण्डु हों या धृतराष्ट्र, भीष्म हों या

विदुर, द्रोण हों या द्रुपद भीम हों या दुर्योधन कर्ण हों या अर्जुन, युधिष्ठिर हों या कृष्ण ।

व्यास जी ने महाभारत में कर्ण का वर्णन विविध प्रसंगों में इन स्थलों पर किया है—

1. आदिपर्व के 17 वें तथा 33 वें अध्याय में ।
2. सभापर्व के 15 वें अध्याय ।
3. वन पर्व के 17 वें तथा 19 वें अध्याय में ।
4. विराट पर्व के 13 वें तथा 14 वें अध्याय में ।
5. उद्योग पर्व 13 वें, 29, 30 तथा 35 वें अध्यायों में ।
6. भीष्म पर्व के 23 वें तथा 30 वें अध्यायों में ।
7. द्रोण पर्व के नौ अध्यायों में (4, 6, 22, 24, 26, 27, 29, 30, 35) ।
8. कर्ण पर्व—सम्पूर्ण ।

इस प्रकार 18 पर्वों के ग्रन्थ में आठ पर्वों में कर्ण का वर्णन किसी न किसी प्रसंग में किया गया है और एक पूरा पर्व (आठवाँ) कर्ण को समर्पित है ।

व्यास जी ने कर्ण का चरित्र इतनी सूक्ष्मता व समग्रता से चित्रित किया है कि व्यक्ति नतमस्तक हो जाता है ।

कर्ण की उत्पत्ति के विषय में सन्देह नहीं कि वह कुन्ती का कानीन पुत्र था । इस का उद्घाटन स्वयं कुन्ती ने किया है—

कानीन स्त्वं मया जातः पूर्वजः कुक्षिणा धृतः ।
कुन्तिराजस्य भवने पार्थस्त्वमसि पुत्रक ।।
(उद्योग पर्व 30 वाँ अध्याय)

यही तथ्य भीष्म पितामह भी कर्ण को बताते हैं—

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता ।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ।।
(भीष्म पर्व 30 वाँ अध्याय)

इन प्रमाणों को देखते हुए स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती का यह मत कि कृष्ण द्वारा कर्ण को कुन्ती का पुत्र बताना उसे दुर्योधन से दूर करने के उद्देश्य से की गयी एक राजनैतिक चाल थी समीचीन नहीं जान पड़ता ।

कर्ण का पालन चम्पा नगरी (वर्तमान बिहार राज्य के भागलपुर जिले में) जो गंगा के किनारे एक व्यापारिक केन्द्र था, में सूत परिवार में हुआ था इनके

पालक पिता अधिरथ थे और माता राधादेवी थीं। पिता रथ संचालन करते थे।

मनु स्मृति से हमें ज्ञात होता है कि सूत शब्द का प्रयोग उन सन्तानों के लिए होता था जो ब्राह्मण कन्या से क्षत्रिय पिता द्वारा उत्पन्न हों।

क्षत्रियाद्विप्र कन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागध वैदेहो राजविप्राङ्गना सुतौ ।।
(10 वें अध्याय का 11 वाँ श्लोक)

महाभारत का कर्ण केवल शूरवीर या दानी ही नहीं है अपितु कृतज्ञता, मित्रता, सौहार्द्र, त्याग और तपस्या का प्रतिमान भी है। वह ज्ञानी, दूरदर्शी, पुरुषार्थी और नीतिज्ञ है और धर्मतत्व समझता है। वह दृढ़ निश्चयी है और अपराजेय है।

व्यास जी महाभारत में उसका प्रवेश सीधे रंगशाला में राजकुमारों की शस्त्र परीक्षा के अवसर पर कराते हैं वहाँ जो चित्र उसके व्यक्तित्व का खींचा है वह दर्शनीय है—

सहजं कवचं बिभ्रत कुण्डलोद्योतिताननः।
सधनुर्बद्धनिस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः ।।
सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्य पराक्रमः।
दीप्ति कान्तिद्युतिगुणैः सूर्येन्दु ज्वलनोपमः ।।
(आदि पर्व 19 वाँ अध्याय)

वहाँ कर्ण द्रोणाचार्य जैसे सर्वश्रेष्ठ गुरु द्वारा शिक्षित राजकुमारों से भी अधिक श्रेष्ठ कौशल का चमत्कार प्रदर्शित कर सबको चकित अर्जुन को क्रुद्ध और द्रोण को लज्जित व चिन्तित कर देता है।

ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा।
यत् कृतं तत्र पार्थेन तच्चकार महाबलः ।।

इसी अवसर पर अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए आहूत करना और वंश परिचय देने में लज्जित होने पर दुर्योधन द्वारा उसे मित्र बनाना और अंगदेश का नरेश बनाना वर्णित है। यहीं से कर्ण दुर्योधन की अटूट मैत्री प्रारम्भ होती है जिसे कोई प्रलोभन, कोई भय, ममता या मोह तोड़ नहीं सके और इसो मैत्री पर वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है।

श्री कृष्ण द्वारा यह बताए जाने पर कि कुन्ती तुम्हारी माँ है और अब दुर्योधन का साथछोड़कर अपने अनुज पाण्डवों से मिल जाओ कर्ण उत्तर देते हैं—

वधात बन्धाद् भयाद्वापि लोभाद्वापि जनार्दन ।
अनृतं नोत्सहे कर्तुं धार्तराष्ट्रस्य धीमतः ।।

(उद्योग पर्व 29 वाँ अध्याय)

कुन्ती द्वारा की गयी याचना और उनके द्वारा प्रदर्शित ममत्व भी उसे विचलित नहीं कर सका—वह कहता है—

सर्वकामैः संविभक्तः पूजितश्च यथा सुखम् ।
अहं वै धार्तराष्ट्राणां कुर्यां तदफलं कथम् ।।
मया प्लवेन संग्रामं तितीर्षन्ति दुरत्ययम् ।
अपारे पारकामा ये त्यजेयं तानहं कथम् ।।

(उद्योग पर्व 30 वाँ अध्याय)

फिर भी दानवीर जो ठहरे, माता को भी निराश नहीं करते और अर्जुन को छोड़कर शेष चारों पाण्डवों को अभयदान दे देते हैं—

न ते जातु नशिष्यिन्ति पुत्राः पंच यशस्विनि ।
निरर्जुन सकर्णा वा सार्जुना वा हते मयि ।।

पुनः भीष्म पर्व में शर शय्या पर पड़े भीष्म पितामह जब कर्ण को उसका वास्तविक परिचय देते हुए दुर्योधन का साथ छोड़ने और युद्ध विमुख होने को कहते हैं तब भी वह उत्तर देते हैं—

वसुदेवसुतो यद्वत पाण्डवाय दृढव्रतः ।
वसु चैव शरीरं च पुत्र दार तथा यशः ।।
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण ।

अपने माता-पिता (राधा देवी और अधिरथ) के प्रति कर्ण की असीम श्रद्धा और दृढ़ भक्ति है । रंगशाला में समस्त राजवर्ग तथा प्रजाजन के समक्ष सद्यः अभिषिक्त अंग नरेश कर्ण अपने पिता अधिरथ को देख धनुष त्याग उनकी ओर दौड़ते हैं और चरणों पर शीश रख देते हैं—

तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृ गौरवयन्त्रितः ।
कर्णोऽभिषेकार्द्रं शिराः शिरसा समवन्दत ।।

(आदि पर्व)

अपनी माता राधा के विषय में कर्ण जिस श्रद्धा व कृतज्ञता से अपने विचार कृष्ण के समक्ष रखते हैं वे भावनाएँ हर भारतीय युवक के लिए आदर्श हैं अनुकरणीय हैं—

सा मे मूत्रं पुरीषं च प्रतिजग्राह माधव ।
तस्याः पिण्डव्यपनयं कुर्यादस्मद्विधः कथम् ।।
तथा मामभिजानाति सूतश्चाधिरथः सुतम् ।
पितरं चाभिजानामि तमहं सौहृदात् सदा ।।
न पृथिव्याः सकलया सुवर्णस्य च राशिभिः ।
हर्षाद् भयाद्वा गोविन्द मिथ्या कर्तुं तदुत्सहे ।।

(उद्योग पर्व 29 वाँ अध्याय)

महाभारत का कर्ण अभिमानी आत्मप्रशंसक और ईर्ष्यालु नहीं है अपितु बहुत गुणज्ञ और उदार है। द्रौपदी स्वयंवर के पश्चात् हुए विग्रह में वह ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन से लड़ता है कोई किसी को नहीं जीत पाता तो कर्ण बहुत प्रसन्न होता है और उसके कौशल की प्रशंसा करता है—

तुष्यामि ते विप्रमुख्य भुजवीर्यस्य संयुगे ।
अविषादस्य चैवास्य शस्त्रास्त्रविजयस्य च ।।
किं त्वं साक्षाद् धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम ।
अथ साक्षाद्धरिहरः साक्षाद्वाविष्णुरच्युतः ।।

(आदि पर्व 31 वाँ अध्याय)

कर्ण पाण्डवों के प्रति विशेषतः अर्जुन के प्रति प्रतिद्वंद्विता का भाव अवश्य रखता है किन्तु उनकी निंदा नहीं करता। वह उनके गुणों को जानता है और आदर देता है। वह अर्जुन के बल, पराक्रम को जानता है—

अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः ।।

(कर्ण पर्व आठवाँ अध्याय)

युधिष्ठिर की धर्मपरायणता के बारे में वह कहता है—

यदि जानाति मां राजा धर्मात्मा संयतेन्द्रियः ।
कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति ।।

वह उनके कल्याण की कामना करते हुए कृष्ण से कहता है—

स एव राजा धर्मात्मा शाश्वतोऽस्तुयुधिष्ठिरः ।
नेता यस्य हृषीकेशो योद्धा यस्य धनञ्जयः ।।

गुरुजन के प्रति वह अत्यन्त आदर का भाव रखता है। द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर आदि भले उसकी निन्दा करते रहते हैं किन्तु उसके हृदय में इन सबके प्रति

कोई दुर्भावना नहीं है । जो द्रोण भीष्म के कथन का समर्थन करते हुए कर्ण की निन्दा करते हैं—

> रणे रणेऽभिमानी च विमुखश्चापि दृश्यते ।
> घृणी कर्णः प्रमादी च तेन मेऽर्धरथो मतः ॥

उन्हीं द्रोण को भीष्म के घायल होकर गिरने पर कौरव सेना का सेनापति बनाए जाने का प्रस्ताव स्वयं कर्ण इन शब्दों में रखता है—

> अयं च सर्वयोधानामाचार्यः स्थविरो गुरुः ।
> युक्तः सेनापतिः कर्तुं द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ॥

जयद्रथ के मारे जाने पर क्षुब्ध दुर्योधन जब आचार्य की आलोचना करते हुए कहता है कि इन्होंने अर्जुन को व्यूह के द्वार से अन्दर जाने दिया । इस पर कर्ण दुर्योधन को समझाते हैं कि गुरुवर की निन्दा न करो—

> आचार्यं मा विगर्हस्व शक्त्यासौ युध्यते द्विजः ।
> यथा बलं यथोत्साहं त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥
> यद्येनं समतिक्रम्य प्रविष्टः श्वेतवाहनः ।
> नात्र सूक्ष्मोऽपि दोषः स्यादाचार्यस्य कथंचन ॥

(द्रोण पर्व 24 वाँ अध्याय)

जो भीष्म उद्योग पर्व में कर्ण की निन्दा करते हैं—

> "परुषः कत्थनो नीचः कर्णो वैकर्तनस्तव ।"
> मंत्री नेता च बन्धुश्च मानी चात्यन्तमुच्छ्रितः ॥

और जो उसे अर्धरथी कहकर उसका अवमूल्यन करते हैं उन्हीं के घायल होकर गिरने पर कर्ण सूचना मिलते ही उनको देखने के लिए दौड़ा आता है, भीष्म की दशा देख उसके आँसू आ जाते हैं गला रुँध जाता है ।

> निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः ।
> भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः ॥

भीष्म जब लगातार की जाने वाली उसकी निन्दा का कारण बताते हैं तो वह पश्चाताप करते हुए क्षमा माँगता है—

> दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात्तथा ।
> यन्मयेह कृतं किंचित तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

प्रायः यह समझा जाता है कि कर्ण दुर्योधन और शकुनि की कुटिल और क्रूरतापूर्ण योजनाओं में सम्मिलित था। किन्तु यह सत्य नहीं है। कर्ण और दुर्योधन को कभी भी न तो ऐसा परामर्श देता है और न उसकी कुटिल षड्यन्त्र-कारी योजनाओं का अनुमोदन करता है। इसका प्रमाण है आदि पर्व का 33 वाँ अध्याय। वारणावत योजना विफल होने पर पाण्डवों के द्रौपदी स्वयंवर के बाद हस्तिनापुर लौटने की सूचना पाकर दुर्योधन उन्हें नष्ट करने की अनेक छल तथा क्रूरतायुक्त योजनाएँ धृतराष्ट्र के समक्ष रखता है और कर्ण के विचार जानना चाहता है तब कर्ण का उत्तर देखिए—

दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मतिः।
न ह्युपायेन ते शक्या पाण्डवाः कुरुवर्धन ।।

तां विक्रमेण जित्वेमामखिलां भुंक्ष्व मेदिनीम्।
अतो नान्य प्रपश्यामि कार्योपनय जनाधिपः ।।

महाभारत का प्रत्येक महापुरुष जानता है कि कर्ण कितने शूरवीर, शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता, धर्मात्मा तथा दानवीर हैं। जो अश्वत्थामा कृपाचार्य का अपमान करने पर कर्ण को दुरात्मा व नीच कह कर मारने दौड़ता है। वही द्रोणवध के उपरान्त कौरव सेना के सेनापति के चयन पर विचार विमर्श के समय प्रस्ताव रखता है कि कर्ण ही सेनापति बनाए जाने योग्य हैं। क्योंकि—

वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून्।
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।।

भीष्म भी उसकी आलोचना उसे हतोत्साहित के लिए करते रहते हैं ताकि दुर्योधन अपनी नीच योजनाओं से निवृत्त हो—

"तेजो वध निमित्तं तु परुषं त्वाहमब्रुवन्।"
"कुल भेदभयाच्चाहं सदा परुष मुक्तवान्।"

यथार्थ में वे जानते हैं—

जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम् ।।

वे उसे पुरुषों में अनुपम देवता समान् गुणों में कृष्ण के समान और बल विक्रम में अर्जुन के समान बताते हैं—

"न त्वया सदृशः कश्चित् पुरुषेष्वमरोपम"।
"इष्वस्त्रे चास्त्रसंधाने लाघवेऽस्त्र बले तथा"।
सदृशः फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महात्मना।।

शल्य भी महारथी अत्यन्त बलवान व उच्च वर्ग के क्षत्रिय और मद्राधिपति होने से अभिमानी हैं जब उन्हें कर्ण का सारथी बनना पड़ता है तो आत्मग्लानि, दर्प और कर्ण को हतोत्साहित करने के लिए वे उसको नाना प्रकार से तुच्छ बताते हैं किन्तु वही अर्जुन के सामने आने पर कर्ण से कहते हैं—

त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनञ्जयम्।।

श्रीकृष्ण तो सर्वज्ञ हैं ही। वे कर्ण की धर्मज्ञता, ज्ञान, त्याग, तप, दानशीलता और शौर्य को जानते हैं—

त्वमेव कर्ण जानासि वेद वादान् सनातनान्।
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः।।

अर्जुन कहीं अभिमानवश कवच कुण्डल विहीन तथा इन्द्र प्रदत्त शक्ति के उपयोग के पश्चात् कर्ण को सामान्य योद्धा समझकर प्रमाद न कर बैठे इस आशंका से कृष्ण उसे सावधान करते हैं और तत्व की बात बताते हैं कि कर्ण कई अर्थों में तुमसे भी श्रेष्ठ हैं—

अवश्यं तु मया वाच्यं यत्पथ्यं तव पाण्डव।
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहव शोभिनम्।
"त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम्"।।
कर्णो हि बलवान दृप्तः कृतास्त्रश्च महारथः।
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः।।
तेजसा वह्नि सदृशो वायुवेग समो जवे।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली।।

(कर्ण पर्व)

और यह कर्ण के विषय में अतिशयोक्ति नहीं है। कर्ण धृष्टद्युम्न आदि महारथियों को हराकर पांचालों तथा सोमकों का ऐसा विनाश करता है जैसा स्वयं भीष्म व द्रोण भी नहीं कर सके थे—

नैव भीष्मो न द्रोणो नान्ये युधि च तावकाः।
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे।। (कर्ण पर्व)

युधिष्ठिर स्वीकार करते हैं कि कर्ण के आतंक से वे तेरह वर्ष रात को सुख से सो नहीं सके हैं ।

त्रयोदशवर्षाणि यस्माद्भीतो धनञ्जय ।
रात्रौ लेभे स्म न निद्रां न चाहनि सुखं क्वचित् ।।

(कर्ण पर्व)

युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव चारों भाइयों को युद्ध में वह पराजित कर देता है किन्तु कुन्ती को दिए गये वचन के कारण छोड़ देता है ।

वध प्राप्तं तु तं शूरो नाहनद धर्मवित्तदा ।
स्मृत्वा कुन्त्याः वचो राजंस्तत एवं व्यसर्जत ।।

(कर्ण पर्व)

युधिष्ठिर को पराजित कर कर्ण यह कहते हुए उन्हें छोड़ देते हैं —

स्व गृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ।
न हि त्वां समरे राजन् हन्यात् कर्ण कथंचन ।।

(कर्ण पर्व)

स्वयं अर्जुन भी कृष्ण भगवान की कृपा से ही कर्ण के बाणों से बच पाते हैं । फिर भी घायल हो कई बार मूर्छित होते हैं । कर्ण का वध करने में वे तभी सफल होते हैं जब वह युद्ध विरत हो धनुष त्याग रथ का फँसा हुआ पहिया निकाल रहा होता है । कर्ण दूरदर्शी, ज्ञानी और तत्वज्ञ भी है । वे जानते हैं कि श्री कृष्ण स्वयं भगवान हैं दुष्ट राजाओं और अधर्म के विनाशार्थ जो महारण रचा जा रहा है उसके सूत्रधार श्री कृष्ण ही हैं । वह जानता है कि इस शस्त्र यज्ञ में सभी शूरवीर जिनमें वह भी शामिल है अपने प्राणों का उत्सर्ग करेंगे ।

धार्तराष्ट्रस्य वार्ष्णेय शस्त्र यज्ञो भविष्यति ।
अस्य यज्ञस्य वेत्तात्वं भविष्यसि जनार्दन ।।
राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधन वाशनुगाः ।
रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यम सादनम् ।।
अहं चान्ये च राजानो यच्च तत् क्षत्रमण्डलम् ।
गाण्डीवाग्निं प्रवेक्ष्याम इति मे नास्ति संशयः ।।

(उद्योग पर्व 29वां अध्याय)

भीष्म से कर्ण का रहस्यमय संवाद संकेत देता है कि दुष्ट क्षत्रियों और अधर्मी राजाओं की विनाश योजना में कर्ण भी कृष्ण के समान सूत्रधार है—

मा चैतद् व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव।
कोपिताः पाण्डवाः नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम् ।।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निर्वर्तितुम।
(भीष्म पर्व 30वां अध्याय)

और कर्ण की दानवीरता तो प्रसिद्ध है ही अपने पिता सूर्य द्वारा सावधान करने पर भी विप्र रूपधारी इन्द्र को पहचान लेने पर भी उनका उद्देश्य जान लेने पर भी और यह जानते हुए भी कि भीषण रण होने वाला है वह अपने सहज कवच और दिव्य कुण्डल उन्हें देकर अपना प्रण पालता है।

इन सब गुणों के होते हुए भी व्यास जी ने कर्ण को एक अतिमानव के रूप चित्रित नहीं किया है उसमें मानवोचितं दोष भी हैं। उसमें उद्धतता है, आलोचना करने पर वह क्रुद्ध हो असहनशीलता का परिचय देता है और कृपाचार्य का अपमान करता है। अपना अपमान करने वाले के प्रति वह क्रूर हो जाता है। द्रौपदी ने स्वयंवर में मैं सूतपुत्र का वरण नहीं करूँगी यह कहा था इस अपमान के शल्य से तिलमिलाया कर्ण द्यूत कक्ष में द्रोपदी के प्रति अपमानजनक शब्द भी कह देता है। अन्य महारथियों के साथ मिलकर अकेले अभिमन्यु को मारने मैं वह भी सम्मिलित है। ब्रह्मास्त्र विद्या प्राप्ति के लिए वह परशुराम से भी छल करता है और स्वयं को ब्राह्मण बताता है। और द्वैतवन में चित्ररथ गन्धर्व से पराजित हो वह युद्ध से विमुख होता है।

इस प्रकार व्यास जी ने चन्द्रमा के कलंक को नहीं पोंछा है और पात्र चित्रण में अतिरंजना से बचे हैं। किन्तु कर्ण के गुणों की प्रभा में ये दोष छिप जाते हैं—

"एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्णिवाङ्कः।"

□□

कृति के विषय में

द्वादश शताधिक वृत्त हैं कृति में चतुर्दश सर्ग हैं।
विविध हिन्दी छन्द संस्कृत वृत्त के संवर्ग हैं।
आत्मचिन्तन परक शैली का यहाँ उपयोग है।
अलंकारों का किया समुचित कहीं विनियोग है।

एक पद्यमय सर्ग षष्ठ हैं इस प्रबन्ध में।
अष्ट सर्ग हैं यहाँ सुवर्णित विविध छन्द में।
हुआ प्रबन्ध दुःखान्त रीति से यह कुछ हटकर।
नायक को अमरत्व मिला मैत्री पर मिटकर।

दोष युक्त भी शिव सहित इस कृति का हर सर्ग।
भोग और अपवर्ग से श्रेष्ठ सदा उत्सर्ग।

सूर्य शशि निभ कृतियों के बीच
जलाया मैंने भी लघु दीप।
वाङ्मय रत्नाकर के गर्भ
पड़ी रहतीं बहुसंख्यक सीप।

आधुनिक कविता का युग आज
छा रहा सभी ओर अतुकान्त।
प्रसंगाश्रित प्रकीर्ण स्वच्छन्द
काव्य लिखना कवियों को कान्त।

छन्दमय आयत एक प्रबन्ध
और यह पौराणिक आख्यान।
भीत हूँ कहीं न कर दें सुधी
पुरातन कहकर प्रत्याख्यान।

कर्ण का पावन विशद चरित्र
किया वर्णित निज मति अनुसार।
श्रेष्ठ है या कि अवर यह ग्रन्थ
बिबुध जन पर यह छोड़ा भार।

हो उदात्तता भावों की
वाणी में भी गरिमा हो।
तो क्यों नहीं भारती की
भारत में फिर महिमा हो।

पटु सदुक्ति वैचित्र्य कथन का
और अलंकृति रुचिकर।
वही सुकृति जो पोषक उर की
मानस को जो शुचिकर।

□□

राधेय के विषय में

सानुग्रह होते न यदि गिरि तनया के कान्त ।
कैसे लिखता कर्ण का पावन यह वृत्तान्त ।

महापात्र जिसकी कथा स्वयं कह गये व्यास ।
मुझ अपात्र ने कर दिया उसका बस विन्यास ।

यह चरित नायक है जिसे प्रतिक्षण मिली प्रतिकूलता ।
पुरुषार्थ से जिसने करी हर बाध्यता अनुकूलता ।
एक उद्यम का सहारा ही सदा जिसने लिया ।
कष्ट हँसकर सह लिए अवहेलना का विष पिया ।

इन्द्र भी उपकृत किये देकर सहज तनुत्राण भी ।
मित्रता के लिए रण में दिए अपने प्राण भी ।
तितिक्षा भी बनीं जिसके हेतु कारण शाप का ।
शब्द बेधी बाण चालन बना अर्जक पाप का ।

सारथी सुत रूप में जीना पड़ा रवि तनय को ।
आमरण सहना पड़ा जिसको नियति के अनय को ।
भावना की अपेक्षा कर्त्तव्य को जिसने चुना ।
जनक, हरि के, जननि के, प्रस्ताव को कर अनसुना ।

जाति अनुगत नहीं होते ज्ञान गौरव वीरता ।
वंशगत होते नहीं पुरुषार्थ करुणा धीरता ।
सिद्ध करके गया धर्माचरण है सबके लिए ।
देव भी वह क्षुद्र है जो माँगता अपने लिए ।

नहीं कर्ण के साथ न्याय में किंचित भी कर पाया।
करुण प्रसंगों में भी रस का सिंचन क्या कर पाया।
सीमा अपनी ज्ञात मुझे इस कारण खेद नहीं है।
उड़ता कितनी दूर पतंगा यह कुछ भेद नहीं है।

किन्हीं अर्थों में बनें हम भी नहीं क्या कर्ण हैं।
आत्म विस्मृत हो चुके हैं दीन परम विवर्ण हैं।
अस्मिता को खोजते हैं भूलकर उद्‌भूति को।
साथ देते हैं अनय का त्याग अपनी भूति को।

उपेक्षा किस भाँति द्रोही बना सकती मनुज को।
धूर्त निज हित साधने में लगाते रवि तनुज को।
सीखना है पाठ अब भी श्रेष्ठ आर्य समाज को।
गुणादर समभाव लाएँ तोड़ भेदक राज को।

सत्य को साधा सदा पुरुषार्थ कर जीते रहे।
यशस्वी बन ज्ञान का पीयूष हम पीते रहे।
मित्रता औदार्य, श्रद्धा, भक्ति थी भूति - प्रदा।
मान हित उत्सर्ग सब कुछ किया है हमने सदा।

शौर्य संयम ज्ञान निष्ठा त्याग को अब छोड़कर।
बह चले किस ओर अपनी जननि से मुख मोड़कर।
स्वार्थ तृष्णा धूर्तता संकीर्णता क्यों छा गयी।
सोम रस-पायी अरे हाला तुम्हें क्यों भा गयी।

आज रहे हम भूल मूल बिना जीवन नहीं।
संस्कृति के प्रतिकूल गतिमय हैं अज्ञानवश।

□□

भूमिका

श्री शिवकुमार मिश्र ने अपना प्रबन्ध काव्य महाभारत की कथा के अप्रतिम पात्र कर्ण को केन्द्र में रखकर रचा है। मैंने इसे आद्यन्त पढ़ा। यह काव्य मुझे दो दृष्टियों से उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण काव्य लगा। एक इसकी आख्यान योजना सुगठित और सुसम्बद्ध है। महाभारत के कर्ण से जुड़े आख्यानों का इसमें संयोजन इस प्रकार किया गया है कि महाभारत की कथावस्तु से विचलन भी नहीं है और उसमें प्रत्येक स्थल पर एक नवोन्मेष भी है। श्री कृष्ण अवतरण के सम्बन्ध को गहरी समझ से व्यक्त किया गया है। मैंने कर्ण को केन्द्र में रखकर लिखी गयी अनेक रचनायें पढ़ीं, उनमें कर्ण का उन्नयन श्रीकृष्ण को तरह देकर किया गया है जो महाभारत के तात्पर्य के प्रतिकूल है। स्व० पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र के काव्य में सारी अच्छाइयों के बावजूद यह खटकने वाली बात है कि महाभारत के मूल अभिप्राय के प्रतिकूल कृष्ण के चरित्र का महत्व कम किया गया है।

कर्ण के दो उल्लेखनीय मानवीय मूल्यों को विशेष रूप से यह रेखाँकित किया गया है—दानशीलता और कृतज्ञता। ये दोनों गुण ही कर्ण के नाश के कारण भी बनते हैं क्योंकि कहीं न कहीं इन दोनों का अहंकार कर्ण के मन में है और भारतीय ट्रेजडी की अवधारणा में नियति से जूझना त्रासदी का मूल नहीं है न देवताओं का अकृपा झेलना मूल में है। हमारी ट्रेजडी की अवधारणा विवेक के भ्रंश से उद्‌भूत है और विवेक का भ्रंश तभी होता है जब मनुष्य को अपनी किसी विशिष्टता का अहंकार हो जाता है। इसीलिए कभी-कभी गुण दोष बन जाते हैं। श्री शिवकुमार जी ने इसको ठीक तरह पकड़ा। उनका आख्यान अपने में समग्र है पर महाभरत से विलग नहीं है।

इस काव्य की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसका काव्यबद्ध परिपक्व है। छन्द की याजना में सामंजस्य है। भाषा आख्यान काव्य के अनुरूप है। ऐसे पौराणिक विषय पर लिखे गये काव्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है विशेषकर उन शब्दों का जिनमें सांस्कृतिक अर्थ निहित होते हैं। सम्प्रेषण में कठिनाई न हो, इसके लिए रचनाकार ने ऐसे शब्दों का अर्थ भी दे दिया है।

मैं श्री शिवकुमार मिश्र की काव्य-यात्रा की मंगल कामना करता हूँ।

दिनांक : जनवरी 27, 1992 **(विद्यानिवास मिश्र)**

'राधेय, प्रबन्ध काव्य पर एक दृष्टि'

महाभारत में कर्ण का चरित्र लीला पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के चरित्र के बाद सर्वाधिक महान और ऊर्जामण्डित है। शौर्य, निष्ठा, सत्य, और दानशीलता उसमें मूर्तिमान होकर अवतरित हुए थे। महाभारतकार ने उसे देवोपम गुणों का आगार बताते हुए उसकी महानता को इतने प्रकार से रेखांकित किया है कि मन में औदात्य का आवेग उमड़ पड़ता है। कुन्ती का कानीन पुत्र होकर भी वह जीवन भर सूतपुत्र के नाम से ही सम्बोधित किया गया। अंगराज होकर भी वह नीलरक्तवर्णी क्षत्रियों की कोटि में नहीं आ सका। पर उसके तेज और अथाह रण कौशल के सामने सभी श्रीहत थे।

महर्षि वेद व्यास ने कर्ण को कथा के विविध प्रसंगों में जिस प्रकार उद्भाषित किया है उससे पाठक चमत्कृत हो उठता है। हिन्दी में कर्ण के धीरोदात्त चरित्र को लेकर अनेक काव्य लिखे गए हैं। संस्कृत एवं इतर भारतीय भाषाओं की बात मैं नहीं कह सकता। आज के युग में जब उपन्यास को महाकाव्य का उत्तराधिकारी माना जाता है मराठी के श्रेष्ठ उपन्यासकार श्रीशिवाजी सावन्त द्वारा लिखित 'मृत्युंजय' उपन्यास भी एक महाकाव्य का भावपुंज और शवित लिए है। हिन्दी में लक्ष्मीनारायण मिश्र, रामधारी सिंह दिनकर और आनन्दकुमार 'अंगराज' कवियों के बाद मेरी जानकारी में 'राधेय' कर्ण की कथा को लेकर लिखा गया नवीनतम काव्य है जो मेरे पढ़ने में आया है। चौदह सर्गों के इस प्रबन्ध में लगभग बारह सौ पद्यों में हिन्दी और संस्कृत के तीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग कर लेखक ने आत्मचिन्तन परक शैली में कर्ण के चरित्र का वर्णन किया है। हिन्दी के प्रचलित छन्दों के साथ संस्कृत के प्रमिताक्षरा, प्रमाणिका, शशिकला, दोधक, तोटक, तूणक, पंचचामर, चित्र, रथोद्धता, तथा भुजंगप्रयात जैसे वृत्तों का भी प्रयोग किया गया है जो तुकान्त हैं।

लेखक ने छै सर्गों में एक प्रकार के छन्द रखे हैं किन्तु आठ सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है जो प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है। अलंकार योजना में कवि संस्कृत के भारवि तथा माघ से और हिन्दी के कवियों में आचार्य

केशवदास से विशेष प्रभावित प्रतीत होता है। कौशल का चमत्कार प्रकट करने की ओर कवि की विशेष प्रवृत्ति है जो आज के पाठक को तो नहीं पर परम्परा प्रिय पाठक को रुचिकर लगेगी।

आजीवन अपराधबोध से सविषाद रहने वाली कुन्ती के पश्चाताप से आरम्भ होकर कुन्ती के शोक में ही समाप्त होने वाला यह परिश्रमपूर्वक लिखा गया काव्य शोकान्तिका का औदात्य लिए है। सच पूछा जाय तो महाभारत में कुन्ती का चरित्र भी अद्भुत है। जीवन भर क्लेश सन्त्रास और पराभव झेलने वाली यह वीरप्रसवा राजनारी पांडु जैसा क्लीव पति पाकर और उसे भी असमय खोकर क्या-क्या नहीं देखती सहती। यदि गान्धारी आँखों के रहते अन्धी है तो कुन्ती जीभ के रहते वाणी की क्षमता पाकर भी गूँगी है। कृष्ण जैसे सर्व-शक्तिमान की बुआ होकर भी वह हर परिस्थिति में अपने को असहाय ही पाती है।

उसका करुण विलाप मन को स्पर्श करने वाला है:

"पा एकान्त लिपट केशव से फूट-फूट कर रोयी।
इससे बड़ा और दुख दे दे, नियति बचा यदि कोई।
मेरी जीवन नौका बहती रही सदा दृग जलपर।
सुत को छाया दे न सकी यह दाग लगा अंचल पर।।

तुम तो हरि सर्वज्ञ जानते मन की व्यथा हमारे।
तुम योगी पर बने कौन विधि हम भी सदृश तुम्हारे।
क्या बोला था अन्तिम क्षण में कुछ तो मुझे बताओ।
कैसे गिरा वीर सुत रण में मुझसे कुछ न छिपाओ।।

परन्तु कर्ण तो सचमुच राधेय है कौन्तेय नहीं। कुन्ती के प्रति कभी उसके मन में मातृभाव जागा ही नहीं। यह सम्भव नहीं लगता कि उसके सम्मुख कुन्ती की स्वीकारोक्ति से पहले उसे यह आभास या जानकारी न रही हो कि वह कौन है। कुल और जाति के अहंकार के उस युग में कर्ण के भीतर अपने वीरत्व और पौरुष का अहं था। माता-पिता या वंश की देन के गौरवबोध से हटकर कर्ण अपने सामर्थ्य के बल पर जीना और मरना चाहता है। राजाओं, क्षत्रियों और दासियों के संगम से एक नए वर्ग सूत वर्ग का आविर्भाव हो चुका था। उसकी सामाजिकता और जातीय इयत्ता ही अलग थी। पर कर्ण विद्रोह की मानसिकता में ढला था। उसकी अनेक गर्वोक्तियों से यही इंगित होता है। पालक सूतपिता, माता राधा से उसे जो सहज अकृतिम वात्सल्य मिला उससे वह भावाभिभूत था—आजीवन रहा।

डा० इरावती कर्वे ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'युगान्त' और श्रीमती दुर्गा भागवत ने 'व्यासपर्व में' कर्ण के सम्बन्ध में उसके चरित्र को विश्लेषित करते हुए अनेक मनोविश्लेषक तथ्य प्रस्तुत किए हैं। 'राधेय' काव्य में कवि ने कर्ण के जीवन की भव्यता यथाशक्ति अपने छन्दों में बाँधने की चेष्टा की है। उनकी भाषा परिमार्जित है, कथा के जिन प्रसंगों को उन्होंने चुना है उनमें हार्दिकता भी है। पर रचनाशिल्प में प्रयाससाध्यता है।

छन्द विधान, कथा के मार्मिक प्रसंगों की पहचान और रसनिष्पत्ति अलंकारों के काव्योचित प्रयोग और सर्ग विभाजन आदि की दृष्टि से 'राधेय' की गणना सफल प्रबन्ध काव्यों में की जाएगी। कवि ने जो शैली अपनाई है उसके यथा-विधि पालन में वह कहीं पद्धति-च्युत नहीं हुआ। मुझे आशा है कि हिन्दी जगत में इस स्वान्तःसुखाय लिखी गई कृति का स्वागत होगा।

दिनांक 15 मार्च 1992 रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

आत्म निवेदन vii-ix

कर्ण-एक परिचय x-xix

भूमिका xxiv

प्रथम सर्ग : अंकुर 1-16

(60 छन्द)

राजा कुन्तिभोज के महल में पृथा का शिशु त्याग के बाद पश्चाताप व चिन्तन।

द्वितीय सर्ग : अभिषेक 17-30

(71 छन्द)

हस्तिनापुर की रंगशाला में कौरव राजकुमारों की शस्त्र परीक्षा, कर्ण का प्रवेश और कौशल प्रदर्शन, अर्जुन को द्वन्द्व हेतु आह्वान, वंश परिचय, कर्ण का अपमान, दुर्योधन द्वारा कर्ण का अंगराज के रूप में अभिषेक, दोनों में मैत्री।

तृतीय सर्ग : दान 31-42

(99 छन्द)

कर्ण द्वारा इन्द्र को अपने कवच और कुण्डल का दान, इन्द्र द्वारा अपनी शक्ति कर्ण को देना।

चतुर्थ सर्ग : अर्जन 43-63

108 (छन्द)

परशुराम से ब्रह्मास्त्र विद्या के ज्ञान हेतु कर्ण द्वारा महेन्द्रगिरि जाना अपना परिचय छिपाना, कीड़े द्वारा जंघा में छिद्र करने पर गुरु द्वारा, उसके क्षत्रियत्व का ज्ञान और विद्या के निष्फलत्व का शाप (परशुराम के आत्म-चिन्तन के रूप में)।

पंचम् सर्ग : उपदेश 65-93

(93 छन्द)

दुर्वासा ऋषि का हस्तिनापुर आगमन, शकुनि व दुर्योधन द्वारा उनकी सेवा और कुटिल शकुनि द्वारा उनसे द्वैत वनवासी युधिष्ठिर के पास जाने का आग्रह, कर्ण व दुर्वासा संवाद, कर्ण का सामाजिक विसंगतियों पर आक्रोश, दुर्वासा का उपदेश।

षष्ठ सर्ग : मन्त्रणा 95-108

(34 छन्द)

विराट के महल में पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण का विचार विमर्श। वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि बीतने पर भावी योजना पर विचार, भीम द्वारा युद्ध का प्रस्ताव, कृष्ण द्वारा शान्ति का प्रस्ताव।

सप्तम् सर्ग : प्रस्ताव 109-149

(126 छन्द)

श्रीकृष्ण द्वारा शान्ति प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाना आधे राज्य को या कुछ नहीं तो पाँच गाँव ही पाण्डवों को देने का दुर्योधन से अनुरोध, दुर्योधन द्वारा कृष्ण का अपमान, श्रीकृष्ण व कर्ण की वार्ता, श्रीकृष्ण द्वारा उसके, कुन्ती पुत्र होने का रहस्योद्घाटन, पाण्डव पक्ष में मिलने का आग्रह, कर्ण द्वारा अस्वीकार।

अष्टम् सर्ग : याचना 151-180

(88 छन्द)

गंगा तट पर सूर्य पूजा के बाद कर्ण से कुन्ती की भेंट, कुन्ती द्वारा उसे पुत्र बताना और पाण्डवों (अपने भाइयों) से मिल जाने का आग्रह कर्ण द्वारा चारों पाण्डवों को (अर्जुन को छोड़कर) अभयदान। किन्तु पक्ष परिवर्तन अस्वीकृत।

नवम् सर्ग : सूत्रधार 181-197

(86 छन्द)

श्रीकृष्ण के आत्म चिन्तन के रूप में महाभारत युद्ध के पहले 14 दिन का वर्णन, जयद्रथ वध, कर्ण द्वारा घटोत्कच का वध।

दशम् सर्ग : मन्थन 199-231

(108 छन्द)

भीष्म पितामह द्वारा अर्धरथी कहकर अपमानित किए गए कर्ण का प्रथम दश दिन तक युद्ध से दूर रहना, और मित्र दुर्योधन की सहायता न कर पाने के लिए बेचैनी में आत्म चिन्तन, अतीत के चलचित्र।

एकादश सर्ग : आशीष 233-257

(92 छन्द)

कर्ण द्वारा शरशय्या पर पड़े भीष्म से भेंट, भीष्म द्वारा रहस्योद्घाटन, दोनों की वार्ता, कर्ण को आशीर्वाद।

द्वादश सर्ग : अभियान 259-270

(54 छन्द)

द्रोण वध के उपरान्त कर्ण को कौरव सेना का नायक बनाया जाना, कर्ण व शल्य संवाद, कर्ण द्वारा घोर युद्ध चारों पाण्डवों को तथा धृष्टद्युम्न को पराजित करना और छोड़ देना।

त्रयोदश सर्ग : अपराजेय 271-322

(214 छन्द)

कर्ण द्वारा घोर युद्ध, अर्जुन से द्वैरथ युद्ध, दिव्यास्त्रों का प्रयोग, कर्ण अर्जुन संवाद, रथ चक्र फँसना, श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को भड़काना, कर्ण की भर्त्सना, कर्ण द्वारा प्रत्युत्तर, कर्ण वध, श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद, दुर्योधन का शोक, भीष्म के उद्‌गार।

चतुर्दश सर्ग : अनुताप 323-332

(22 छन्द)

कर्ण की वीर गति पर कुन्ती का विलाप, कृष्ण द्वारा सान्त्वना।

प्रमुख पात्र परिचय 333-346

वैज्ञानिक नियम एवं संकेत 347-350

कवि परिचय 351-352

□□

प्रकाशकीय

साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। युग परिवर्तन के साथ-साथ जीवन सम्बन्धी मूल्य एवं मान्यताएँ बदलती रहती हैं, इसी के साथ-साथ साहित्य के मानदण्ड भी बदलते रहते हैं।

साहित्य और उसका अंगभूत काव्य एक सप्रयोजन सर्जना है। यह अलग बात है कि अपने-अपने देश-काल और युग-प्रवृत्तियों, कवियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप वह प्रयोजन बदलता रहा है। संस्कृताचार्य मम्मट ने कहा है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेश युजे॥

'राधेय' प्रबन्ध काव्य की रचना करके श्री शिवकुमार मिश्र ने सामाजिक विसंगतियों व जातिगत द्वेष को महाभारत के 'उपेक्षित' पात्र 'कर्ण' के माध्यम से उजागर किया है। गुणवान, दानवीर, शूरवीर, दृढ़ निश्चयी होते हुए भी 'कर्ण' को खलनायक का रोल अदा करना पड़ा। ठीक यही स्थिति आज हमारे समाज की है, जहाँ नेक व सहृदय इंसान उचित सम्मान नहीं पाते हैं। इस दृष्टि से मिश्र जी की काव्य रचना 'राधेय' ऐतिहासिक होते हुए भी सामयिकता का भाव रखती है। प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से 'राधेय' हिन्दी के सर्वोत्तम प्रबन्ध-काव्यों में अपना स्थान रखती है।

काव्य-प्रतिभा के अभाव में महाकाव्य की रचना करने की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। 14 सर्गों में 1250 से भी अधिक छन्दों के विशाल तथा उत्तम काव्य गुणों से ओत-प्रोत 'राधेय' का प्रणयन करने वाले श्री शिवकुमार मिश्र वास्तव में ही महान् काव्य-प्रतिभा के धनी हैं।

ऐसे काव्य ग्रंथ को प्रकाशित कर 'कवि सभा दिल्ली' गर्व का अनुभव कर रही है। आशा है भविष्य में भी साहित्यकारों तथा सुधी पाठकों का सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा।

'पराग' प्रदीप
सचिव
कवि सभा दिल्ली